

जब हम किस्से सुनते तो कलेजे उछलकर हलक में फँस जाते और रात को साँपों की फुँकारें सुनकर उठते और चीखें मारने लगते ।  
गोरी बी ने सारी उम्र कैसे-कैसे नाग खेलाये होंगे, कैसे अकेली नामुराद जिन्दगी का बोझ ढोया होगा ? उनके रसीले होठों को कभी किसी ने नहीं चूमा । उन्होंने अपने जिस्म की पुकार को क्या जवाब दिया होगा ?  
अच्छा होता, यह कहानी यहीं खतम हो जाती ।  
किस्मत मुस्करा रही थी ।

पूरे चालीस बरस बाद काले भियाँ अचानक आय ही आ धमके । उन्हें किस्म-किस्म की लाइलाज बीमारियाँ लग चुकी थीं । पोर्-पोर सड़ रही थी । रोम-रोम रिस रहा था । बदबू के मारे नाक सड़ी जाती थी । मगार आँखों में हसरतें जाग रही थीं, जिनके सहारे जान सीने में अटकती हुई थी ।  
“गोरी बी से कहो मुश्किल आसान कर जायें ।”

एक कम साठ बरस की दूल्हन ने रूठे हुए दूल्हा को मनाने की तैयारियाँ शुरू कर दीं । मेहंदी घोलकर हाथ-पैरों में रचायी । पानी गरम कर के पिंडा पाक किया, सुहाग का चिकटा हुआ तेल सफेद लटों में बसाया । सन्दूक खोल कर भर-भर टपकता-झड़ता शादी का जोड़ा निकाल कर पहना और इधर काले भियाँ दम तोड़ते रहे ।

जब गोरी बी शरमाती-लजाती धीरे-धीरे कदम उठाती उनके सिरहाने पहुँचीं तो झिलंगे पलंग पर चीकट तकिये और गूदड़ बिस्तर पर पड़े हुए काले भियाँ की मुर्दा हड्डियों में जिन्दगी की लहर दौड़ गयी । मलकुलमौत' से जूझते हुए काले भियाँ ने हुक्म दिया :

“गोरी बी, घूँघट उठाओ !”

गोरी बी के हाथ उठे, मगार घूँघट तक पहुँचने के पहले गिर गये ।  
काले भियाँ दम तोड़ चुके थे ।

वो बड़े सुकून से उकड़ूँ बैठ गयीं । सुहाग की चूड़ियाँ ठंडी कीं और रँझापे का सफेद आँचल माथे पर खींच लिया ।

माफ़ कीजियेगा, मैं आपको खुद अपने लिहाफ़ का रूमानअगेज जिक्र बताने नहीं जा रही हूँ, न लिहाफ़ से किसी किस्म का रूमान जोड़ा ही जा सकता है । मेरे खयाल में कमबल कम आरामदेह सही, मगार उसकी परछाई इतनी भयानक नहीं होती जितनी—जब लिहाफ़ की परछाई दीवार पर डगमगा रही हो । यह जब का जिक्र है, जब मैं छोटी-सी थी और दिन-भर भाइयों और दोस्तों के साथ मार-कुटाई में गुजार दिया करती थी । कभी-कभी मुझे खयाल आता कि मैं कमबल इतनी लड़ाका क्यों थी ? उस उम्र में जबकि मेरी और बहनें आशिक़ जमा कर रही थीं, मैं अपने-पराये हर लड़के और लड़की से ज़ुलम-वैजार में मशगूल थी ।

यही वजह थी कि अम्माँ जब आगरा जाने लगीं तो हफ़ता-भर के लिए मुझे अपनी एक मुँहबोली बहन के पास छोड़ गयीं । उनके यहाँ, अम्माँ खूब जानती थीं कि चूहे का बच्चा भी नहीं और मैं किसी से भी लड़-भिड़ न सकूँगी । सज़ा तो खूब थी मेरी ! हाँ, तो अम्माँ मुझे बेगम जान के पास छोड़ गयीं । वही बेगम जान जिनका लिहाफ़ अब तक मेरे जहन में गर्म लोहे के दाग़ की तरह महफूज़ है । ये वो बेगम जान थीं जिनके गरीब माँ-बाप ने नवाब साहब को इसलिए दामाद बना लिया कि गो बह पकी उम्र के थे मगार निहायत नेक । कभी कोई रणधी या बाजारी औरत उनके यहाँ नज़र न आयी । खुद हाजी थे और बहुतों को हज करार चुके थे ।

मगार उन्हें एक निहायत अजीबो-गरीब शौक था । लोगों को कबूतर पालने का जुनून होता है, बटेरें लड़ाते हैं, मुर्गबाज़ी करते हैं—इस किस्म के वाहिगत खेलों से नवाब साहब को नफ़रत थी । उनके यहाँ तो बस तालिब इल्म रहते थे । नौजवान, गोरे-गोरे, पतली कमरों के लड़के, जिनका खर्च वे खुद बर्दाश्त करते थे ।

मगर बेगम जान से शादी करके तो वे उन्हें कुल साजो-सामान के साथ ही घर में रखकर भूल गये। और वह बेचारी दुबली-पतली नाजूक-सी बेगम तन्हाई के गम में धुलने लगीं। न जाने उनकी जिन्दगी कहाँ से शुरू होती है? वहाँ से जब वह पैदा होने की गलती कर चुकी थीं, या वहाँ से जब वह एक नवाब की बेगम बनकर आयीं और छपरखट पर जिन्दगी गुजारने लगीं, या जब से नवाब साहब के यहाँ लड़कों का जोर बँधा। उनके लिए मुरगन हलवे और लजीज़ खाने जाने लगे और बेगम जान दीवानखाने की दरारों में से उनकी लचकती कमरोंवाले लड़कों की चुरत पिण्डलियाँ और मोअत्तर-बारीक शबनम के कुर्ते देख-देखकर अंगारों पर लोटने लगीं।

या जब से वह मन्तों-मुरादों से हार गयीं, बिल्बे बँधे और टोटके और रातों-रात वजीफ़ाखानी भी बित हो गयी। कहीं पत्थर में जोंक लगती है! नवाब साहब अपनी जगह से टस-से-मस न हुए। फिर बेगम जान का दिल टूट गया और वह इल्म की तरफ़ मोतवज्जा हुई। लेकिन यहाँ भी उन्हें कुछ न मिला। इश्क़िया नावल और जब्बाती अशआर पढ़कर और भी परती छा गयी। रात की नींद भी हाथ से गयी और बेगम जान जी-जान छोड़कर बिल्कुल ही यासो-हसरत की पोट बन गयीं।

चूहे में डाला था ऐसा कपड़ा-लत्ता। कपड़ा पहना जाता है किसी पर रोब गाँठने के लिए। अब न तो नवाब साहब को फुर्सत कि शबनमी कुर्तों को छोड़कर ज़रा इधर तनज्जा करें और न वे उन्हें कहीं आने-जाने देते। जब से बेगम जान ब्याहकर आयी थीं, रिश्तेदार आकर महीनों रहते और चले जाते, मगर वह बेचारी कैद की कैद रहतीं।

उन रिश्तेदारों को देखकर और भी उनका खून जलता था कि सबके-सब मज़े से माल उड़ाने, उम्दा धी निगलने, जाड़े का साजो-सामान बनवाने आन मरते और वह बावजूद नयी रूई के लिहाफ़ के, पड़ी सदी में अकड़ा करतीं। हर करवट पर लिहाफ़ नयी-नयी सूतें बनाकर दीवार पर साया डालता। मगर कोई भी साया ऐसा न था जो उन्हें जिन्दा रखने के लिए काफ़ी हो। मगर क्यों जिये फिर कोई? जिन्दगी! बेगम जान की जिन्दगी जो थी! जीना बदा था नसीबों में, वह फिर जीने लगीं और खूब जीं।

रब्बो ने उन्हें नीचे गिरते-गिरते सँभाल लिया। चटपट देखते-देखते उनका सूखा जिस्म भरना शुरू हुआ। गाल चमक उठे और हुस्न फूट निकला।

एक अजीबो-गरीब तेल की मालिश से बेगम जान में जिन्दगी की झलक आयी। माफ़ कीजियेगा, उस तेल का नुस्खा आपको बेहतरीन-से-बेहतरीन रिसाले में भी न मिलेगा।

जब मैंने बेगम जान को देखा तो वह चालीस-बयालीस की होगी। ओपफोह! किस शान से वह मसनद पर नीमदराज़ थीं और रब्बो उनकी पीठ से लगी बैठी कमर दबा रही थी। एक ऊदे रंग का दुशाला उनके पैरों पर पड़ा था और वह महारानी की तरह शानदार मालूम हो रही थीं। मुझे उनकी शकल बेइन्तहा पसन्द थी। मेरा जी चाहता था, घण्टों बिल्कुल पास से उनकी सूत देखा करूँ। उनकी रंगत बिल्कुल सफ़ेद थी। नाम को सुर्खी का जिक्र नहीं। और बाल स्याह और तेल में डूबे रहते थे। मैंने आज तक उनकी माँग ही बिगाड़ी न देखी। क्या मजाल जो एक बाल इधर-उधर हो जाये। उनकी आँखें काली थीं और अबरू पर के जापद बाल अलहदा कर देने से कमाने-सी खिची होती थीं। आँखें ज़रा तनी हुई रहती थीं। भारी-भारी फूले हुए पपोटे, मोटी-मोटी पलकें। सबसे ज़ियादः जो उनके चेहरे पर हैरतअंगेज जाज़िबे-नज़र चीज़ थी, वह उनके होंठ थे। अमूमन वह सुर्खी से रंगे रहते थे। ऊपर के होंठ पर हल्की-हल्की मँछें-सी थीं और कनपटियों पर लम्बे-लम्बे बाल। कभी-कभी उनका चेहरा देखते-देखते अजीब-सा लगने लगता था—कम उम्र लड़कों-जैसा।

उनके जिस्म की जिल्द भी सफ़ेद और चिकनी थी। मालूम होता था किसी ने कसकर टाँके लगा दिये हों। अमूमन वह अपनी पिण्डलियाँ खुजाने के लिए किसेलतीं तो मैं चुपके-चुपके उनकी चमक देखा करती। उनका कद बहुत लम्बा था और फिर गोश्त होने की वजह से वह बहुत ही लम्बी-चौड़ी मालूम होती थीं। लेकिन बहुत मुतनासिब और ढला हुआ जिस्म था। बड़े-बड़े चिकने और सफ़ेद हाथ और सुर्ख कंमर... तो रब्बो उनकी पीठ खुजाया करती थी। यानी घण्टों उनकी पीठ खुजाती—पीठ खुजाना भी जिन्दगी की ज़रूरियात में से था, बल्कि शायद ज़रूरियाते-जिन्दगी से भी ज़्यादा।

रब्बो को घर का और कोई काम न था। बस वह सारे वक़्त उनके छपरखट पर चढ़ी कभी धैर, कभी सिर और कभी जिस्म के और दूसरे हिस्से को दबाया करती थी। कभी तो मेरा दिल बोल उठता था, जब देखो रब्बो कुछ-न-कुछ

दबा रही है या मालिश कर रही है। कोई दूसरा होता तो न जाने क्या होता ? मैं अपना कहती हूँ, कोई इतना करे तो मेरा जिस्म तो सड़-गल के खत्म हो जाय। और फिर यह रोज-रोज की मालिश काफी नहीं थी। जिस रोज बेगम जान नहाती, या अल्लाह ! बस दो घण्टा पहले से तेल और खुशबूदार उबटनों की मालिश शुरू हो जाती। और इतनी होती कि मेरा तो तख्त्युल से ही दिल लोट जाता। कमरे के दरवाजे बन्द करके अंगीठियाँ सुलगतीं और चलता मालिश का दौर। अमूमन सिर्फ रब्बो ही रहती। बाकी की नौकरानियाँ बड़बड़ातीं दरवाजे पर से ही, ज़रूरियात की चीज़ें देती जातीं।

बात यह थी कि बेगम जान को खुजली का मर्ज था। बिचारी को ऐसी खुजली होती थी कि हज़ारों तेल और उबटने मले जाते थे, मगर खुजली थी कि कायम। डाक्टर-हकीम कहते, 'कुछ भी नहीं, जिस्म साफ चट पड़ा है। हाँ, कोई जिल्द के अन्दर बीमारी हो तो खैर।' 'नहीं भी, ये डाक्टर तो मुझे पागल ! कोई आपके दुश्मनों को मर्ज है ? अल्लाह रखे, खून में गर्मी है !' रब्बो मुस्कराकर कहती, महीन-महीन नज़रों से बेगम जान को घूरती ! ओह यह रब्बो ! जितनी यह बेगम जान गोरी थी उतनी ही यह काली ! जितनी बेगम जान सफ़ेद थी, उतनी ही यह सुर्ख ! बस जैसे तपाया हुआ लोहा ! हल्के-हल्के चेचक के दाग। गठा हुआ ठोस जिस्म ! फुर्तिले छोटे-छोटे हाथ। कसी हुई छोटी-सी तोंद। बड़े-बड़े फूले हुए होंठ, जो हमेशा नभी में डूबे रहते और जिस्म में से अजीब ध्वरानेवाली बू के शरारे निकलते रहते थे। और ये नन्हें-नन्हें फूले हुए हाथ किस क़दर फुर्तिले थे ! अभी कमर पर, तो वह लीजिए फिसलकर गये कूल्हों पर ! वहाँ से रपटे रानों पर और फिर दौड़े टखनों की तरफ़ ! मैं तो जब कभी बेगम जान के पास बैठती, यही देखती कि अब उसके हाथ कहाँ हैं और क्या कर रहे हैं ?

गर्मी-जाड़े बेगम जान हैदराबादी जाली काररो के कुर्ते पहनतीं। गहरे रंग के पाजामे और सफ़ेद झागा-से कुर्ते। और पंखा भी चलता-हो, फिर भी वह हल्की दुलाई ज़रूर जिस्म पर ठके रहती थी। उन्हें जाड़ा बहुत पसन्द था। जाड़े में मुझे उनके यहाँ अच्छा मालूम होता। वह हिलती-डुलती बहुत कम थी। कालीन पर लेटी है, पीठ खुज रही है, खुशक मवे चबा रही है और बस ! रब्बो से दूसरी सारी नौकरानियाँ खार खाती थीं। चुड़ैल बेगम जान के साथ खाती, साथ उठती-बैठती और माशा अल्लाह ! साथ ही सोती थी ! रब्बो और

बेगम जान आम जलसों और मजमूनों की दिलचस्प गुफ्तगू का मौजूद थीं। जहाँ उन दोनों का जिक्र आया और कहकहे उठे। लोग न जाने क्या-क्या चुटकुले गरीब पर उड़ते, मगर वह दुनिया में किसी से मिलती ही न थी। वहाँ तो बस वह थीं और उनकी खुजली !

मैंने कहा कि उस वक़्त मैं काफी छोटी थी और बेगम जान पर फ़िदा। वह भी मुझे बहुत ही प्यार करती थीं। इत्फ़ाक से अम्माँ आगरे गयीं। उन्हें मालूम था कि अकेले घर में भाइयों से भार-कुटाई होगी, मासी-मासी फ़िल्ंगी, इसलिए वह हफ़्ता-भर के लिए बेगम जान के पास छोड़ गयीं। मैं भी खुश और बेगम जान भी खुश। आख़िर को अम्माँ की भारी बनी हुई थीं।

सवाल यह उठा कि मैं सोऊँ कहाँ ? कुदरती तौर पर बेगम जान के कमरे में। लिहाज़ा मेरे लिए भी उनके छपरखट से लगाकर छोटी-सी पर्लंगड़ी डाल दी गयी। दस-ग्यारह बजे तक तो बातें करते रहे। मैं और बेगम जान चांस खेलते रहे और फिर मैं सोने के लिए अपने पर्लंग पर चली गयी। और जब मैं सोयी तो रब्बो बैसी ही बेठी-उनकी पीठ खुजा रही थी। 'भंगन कहीं की !' मैंने सोचा। रात को मेरी एकदम से आँख खुली तो मुझे अजीब तरह का डर लगने लगा। कमरे में घुप अँधेरा। और उस अँधेरे में बेगम जान का लिहाफ़ ऐसे हिल रहा था, जैसे उसमें हाथी बन्द हो !

"बेगम जान !"

मैंने डरी हुई आवाज़ निकाली। हाथी हिलना बन्द हो गया। लिहाफ़ नीचे दब गया।

"क्या है ? सो जाओ।"

बेगम जान ने कहीं से आवाज़ दी।

"डर लग रहा है।"

मैंने चूहे की-सी आवाज़ से कहा।

"सो जाओ। डर की क्या बात है ? आयतलकुसी<sup>1</sup> पढ़ लो।"

"अच्छा।"

मैंने जल्दी-जल्दी आयतलकुसी पढ़ी। मगर 'यालमू मा बीन' पर हर दफ़ा आकर अटक गयी। हालाँकि मुझे इस वक़्त पूरी आयत याद है।

1. शैतान को भगाने की दुआ।

“तुम्हारे पास आ जाऊँ बेगम जान ?”

“नहीं बेटी, सो रहो।” जरा सख्ती से कहा।

और फिर दो आदिमियों के घुसुर-घुसुर करने की आवाज़ सुनायी देने लगी।

हाय रे! यह दूसरा कौन? मैं और भी डरी।

“बेगम जान, चोर-चोर तो नहीं?”

“सो जाओ बेटा, कैसा चोर?”

रब्बो की आवाज़ आयी। मैं जल्दी से लिहाफ़ में मुँह डालकर सो गयी।

सुबह भरे जहन में रात के खौफनाक नज़ारे का खयाल भी न रहा। मैं हमेशा की बहमी हूँ। रात को डरना, उठ-उठकर भागना और बड़बड़ाना तो बचपन में रोज़ ही होता था। सब तो कहते थे, मुझ पर भूतों का साया हो गया है। लिहाज़ा मुझे खयाल भी न रहा। सुबह को लिहाफ़ बिल्कूल मासूम नज़र आ रहा था। मगर दूसरी रात भेरी आँख खुली तो रब्बो और बेगम जान में कुछ झगड़ा बड़ी खामोशी से छपरखट पर ही तय हो रहा था। और भेरी खाक समझ में न आया कि क्या फ़ैसला हुआ? रब्बो हिचकिचाएँ लेकर रोयी, फिर बिल्ली की तरह सपड़-सपड़ रकाबी चाटने-जैसी आवाज़ें आने लगीं, ऊँह! मैं तो घबराकर सो गयी।

आज रब्बो अपने बेटे से भिलने गयी हुई थी। वह बड़ा झगड़ालू था। बहुत कुछ बेगम जान ने किया—उसे दुकान करायी, गाँव में लगाया, मगर वह किसी तरह मानता ही नहीं था। नवाह गहब के यहाँ कुछ दिन रहा, खूब जोड़े-बागे भी बने, पर न जाने क्यों ऐसा भागा कि रब्बो से भिलने भी न आता। लिहाज़ा रब्बो ही अपने किसी रिश्तेदार के यहाँ उससे भिलने गयी थी। बेगम जान न जाने देतीं, मगर रब्बो भी मजबूर हो गयी।

सारा दिन बेगम जान परेशान रहीं। उनका जोड़-जोड़ टूटता रहा। किसी का छूना भी उन्हें न भाता था। उन्होंने खाना भी न खाया और सारा दिन उदास पड़ी रहीं।

“मैं खुजा दूँ बेगम जान?”

मैंने बड़े शौक से ताश के पत्ते बाँटते हुए कहा। बेगम जान मुझे गौर से देखने लगीं।

“मैं खुजा दूँ? सच कहती हूँ!”

मैंने ताश रख दिये।

मैं थोड़ी देर तक खुजाती रही और बेगम जान चुपकी लेटी रहीं।

दूसरे दिन रब्बो को आना था, मगर वह आज भी गायब थी। बेगम जान का भिज़ाज चिड़चिड़ा होता गया। चाय पी-पीकर उन्होंने सिर में दर्द कर लिया।

मैं फिर खुजाने लगी उनकी पीठ—चिकनी मेज़ की तख्ती-जैसी पीठ। मैं हँस-हँस खुजाती रही। उनका काम करके कैसी खुशी होती थी!

“जरा जोर से खुजाओ। बन्द खोल दो।” बेगम जान बोली, “इधर... रे है, जरा शाने से नीचे... हाँ... वाह भइ वाह! हा! हा!” वह सुरूर में ठण्डी-ठण्डी साँसें लेकर इत्मीनान जाहिर करने लगीं।

“और इधर...” हालाँकि बेगम जान का हाथ खूब जा सकता था, मगर वह मुझसे ही खुजा रही थी और मुझे उल्टा फ़रख हो रहा था। “यहाँ... ओई! तुम तो गुदगुदी करती हो... वाह!” वह हँसी। मैं बातें भी कर रही थी और खुजा भी रही थी।

“तुम्हें कल बाज़ार भेजूंगी। क्या लोगी? वही सोती-जागती गुड़िया?”

“नहीं बेगम जान, मैं तो गुड़िया नहीं लेती। क्या बच्चा है अब मैं?”

“बच्चा नहीं तो क्या बूढ़ी हो गयी?” वह हँसी “गुड़िया नहीं तो बनवा लेना कपड़े, पहनाना खुद। मैं दूगी तुम्हें बहुत-से कपड़े। सुना?” उन्होंने करवट ली।

“अच्छा!” मैंने जवाब दिया।

“इधर...” उन्होंने मेरा हाथ पकड़कर जहाँ खुजली हो रही थी, रख दिया। जहाँ उन्हें खुजली मालूम होती, वहाँ मेरा हाथ रख देतीं। और मैं बेखयाली में, बबुए के ध्यान में डूबी मशीन की तरह खुजाती रही और वह मुतवातिर बातें करती रहीं।

“सुनो तो... तुम्हारी फ्राकें कम हो गयी हैं। कल दर्जा को दे दूंगी, कि नयी सी लाये। तुम्हारी अर्म्पाँ कपड़ा दे गयी है।”

“वह लाल कपड़े की नहीं बनवाऊँगी। चमारों-जैसा है!” मैं बकवास कर रही थी और हाथ न जाने कहाँ-से-कहाँ पहुँचा। बातों-बातों में मुझे मालूम भी न हुआ। बेगम जान तो चुप लेटी थी। “अरे!” मैंने जल्दी से हाथ खींच लिया।

“ओई लडकी ! देखकर नहीं खुजाती ! मेरी पसलियाँ नोचे डालती है !”  
बेगम जान शरारत से मुस्करायीं और मैं झोंप गयी ।

“इधर आकर मेरें पास लेट जा ।”

“उन्होंने मुझे बाजू पर सिर रखकर लिटा लिया ।

“अप है, कितनी सूख रही है । पसलियाँ निकल रही हैं ।” उन्होंने मेरी पसलियाँ गिनना शुरू कीं ।

“ऊँ !” मैं भुनभुनायी ।

“ओइ ! तो क्या मैं खाँ जाऊँगी ? कैसा तंग स्वेटर बना है ! गरम बनियान भी नहीं पहना तुमने !”

मैं कुलबुलाने लगी ।

“कितनी पसलियाँ होती हैं ?” उन्होंने बात बदली ।

“एक तरफ नौ और दूसरी तरफ दस ।”

मैंने स्कूल में याद की हुई हाइजिन की मदद ली । वह भी ऊटपटांग ।

“हटाओ तो हाथ... हाँ, एक... दो... तीन... ”

मेरा दिल चाहा किसी तरह भागूँ... और उन्होंने जोर से भींचा ।

“ऊँ !” मैं मचल गयी ।

बेगम जान जोर-जोर से हँसने लगीं ।

अब भी जब कभी मैं उनका उस वक़्त का चेहरा याद करती हूँ तो दिल पबराने लगता है । उनकी आँखों के पपोटे और वजनी हो गये । ऊपर के होंठ पर सियाही धिरी हुई थी । बावजूद सर्दी के, पसीने की नन्हीं-नन्हीं बूँदें होंठों और नाक पर चमक रही थीं । उनके हाथ ठण्डे थे, मगर नरम-नरम—जैसे उन पर की खाल उतर गयी हो । उन्होंने शाल उतार दी थी और कारगे के महीन कर्त में उनका जिस्म आटे की लोई की तरह चमक रहा था । भारी जड़ाऊ सोने के बटन गरेबान के एक तरफ झूल रहे थे । शाम हो गयी थी और कमरे में अँधेरा घुप हो रहा था । मुझे एक नामालूम डर से वहशत-सी होने लगी । बेगम जान की गहरी-गहरी आँखें ! मैं रोने लगी दिल में । वह मुझे एक मिट्टी के खिलौने की तरह भींच रही थीं । उनके गरम-गरम जिस्म से मेरा दिल बौलाने लगा । मगर उन पर तो जैसे कोई भूतना सवार था और मेरे दिमाग का यह हाल कि न चीखा जाये और न रो सकूँ ।

शोड़ी देर के बाद वह पस्त होकर निढाल लेट गयीं । उनका चेहरा फीका

और बदरौनक हो गया और लम्बी-लम्बी साँसें लेने लगीं । मैं समझी कि अब मरी यह । और वहाँ से उठकर सरपट भागी बाहर ।

शुक्र है कि रब्बो रात को आ गयी और मैं डरी हुई जल्दी से लिहाफ़ ओढ़ सो गयी । मगर नींद कहाँ ? चूप घण्टों पड़ी रही ।

अम्माँ किसी तरह आ ही नहीं रही थीं । बेगम जान से मुझे ऐसा डर लगाता था कि मैं सारा दिन मामाओं के पास बैठी रहती । मगर उनके कमरे में कदम रखते दम निकलता था । और कहती किससे, और कहती ही क्या, कि बेगम जान से डर लगता है ? तो यह बेगम जान मेरे ऊपर जान छिड़कती थीं...

आज रब्बो में और बेगम जान में फिर अनबन हो गयी । मेरी किस्मत की खराबी कहिए या कुछ और, मुझे उन दोनों की अनबन से डर लगा । क्योंकि फ़ौरन ही बेगम जान को खयाल आया कि मैं बाहर सर्दी में घूम रही हूँ और मल्लंगी निमोनिया में !

“लड़की क्या मेरा सिर मुँडवायेगी ? जो कुछ हो-हवा गया और आफ़त आयेगी !”

उन्होंने मुझे पास बिठा लिया । वह खुद मुँह-हाथ सिलफ़्फी में धो रही थीं । चाय तिपाई पर रखी थी ।

“चाय तो बनाओ । एक प्याली मुझे भी देना ।” वह तौलिया से मुँह खुशक करके बोलीं, “मैं जरा कपड़े बदल लूँ ।”

वह कपड़े बदलती रहीं और मैं चाय पीती रही । बेगम जान नाइन से पीठ मलवाते वक़्त अगर मुझे किसी काम से बुलातीं तो मैं गर्दन मोड़े-मोड़े जाती और वापस भाग आती । अब जो उन्होंने कपड़े बदले तो मेरा दिल उलटने लगा । मुँह मोड़े मैं चाय पीती रही ।

“हाय अम्माँ !” मेरे दिल ने बेकसी से पुकारा, “आखिर ऐसा मैं भाइयों से क्या लड़ती हूँ जो तुम मेरी मुसीबत...”

अम्माँ को हमेशा से मेरा लड़कों के साथ खेलना नापसन्द है । कहे भला लड़के क्या शेर-चीते हैं जो निगल जायेंगे उनकी लाइली को ? और लड़के भी कौन, खुद भाई और दो-चार सड़े-सड़ाये ज़रा-ज़रा-से उनके दोस्त ! मगर नहीं, वह तो औरत जात को सात तालों में रखने की कायल और यहाँ बेगम जान

की वह दहशत, कि दुनिया-भर के गुण्डों से नहीं। बस चलता तो उस वक़्त सड़क पर भाग जाती, पर वहाँ न टिकती। मगर लाचार थी। मजबूरन कलेजे पर पटथर रखे बैठी रही।

कपड़े बदल, सोलह सिगार हुए, और गरम-गरम खुशबुओं के अंतर ने और भी उन्हें अंगारा बना दिया। और वह चलीं मुझ पर लाड उतारने।

“घर जाऊँगी।”

मैंने उनकी हर राय के जबाब में कहा और रोने लगी।

“मेरे पास तो आओ, मैं तुम्हें बाजार ले चलूँगी, सुनो तो।”

मगर मैं खली की तरह फैल गयी। सारे खिलौने, मिठाइयाँ एक तरफ़ और घर जाने की रट एक तरफ़।

“वहाँ भैया मारेंगे चुड़ैल !” उन्होंने प्यार से मुझे थपथप लगाया।

‘पड़े मारें भैया,’ मैंने दिल में सोचा और रूठी, अकड़ी बैठी रही।

“कच्ची अभियाँ खट्टी होती हैं बेगम जान !”

जली-कटी रब्बो ने राय दी।

और फिर उसके बाद बेगम जान को दौरा पड़ गया। सोने का हार, जो वह थोड़ी देर पहले मुझे पहना रही थीं, टुकड़े-टुकड़े हो गया। महीन जाली का टुपटा तार-तार। और वह माँग, जो मैंने कभी बिगड़ी न देखी थी, झाड़-झाड़ हो गयी।

“ओह ! ओह ! ओह !” वह झटके ले-लेकर चिल्लाने लगीं। मैं रपटी बाहर।

बड़े जतनों से बेगम जान को होश आया। जब मैं सोने के लिए कमरे में दबे पैर जाकर झाँकी तो रब्बो उनकी कमर से लगी जिस्म दबा रही थी।

“जूती उतार दो।” उसने उनकी पसलियाँ खुजाते हुए कहा और मैं चुहिया की तरह लिहाफ़ में दबक गयी।

सर सर फट खच !

बेगम जान का लिहाफ़ अँधेरे में फिर हाथी की तरह झूम रहा था।

“अल्लाह ! आँ !” मैंने मरी हुई आवाज निकाली। लिहाफ़ में हाथी फुदका और बैठ गया। मैं भी चुप हो गयी। हाथी ने फिर लोट मचाई। मेरा रोआँ-रोआँ

काँप। आज मैंने दिल में ठान लिया कि जरूर हिम्मत करके सिरहाने का लगा हुआ बलब जला दूँ। हाथी फिर फड़फड़ा रहा था और जैसे उकड़ूँ बैठने की कोशिश कर रहा था। चपड़-चपड़ कुछ खाने की आवाजें आ रही थीं—जैसे कोई मजेदार चटनी चख रहा हो। अब मैं समझी ! यह बेगम जान ने आज कुछ नहीं खया। और रब्बो मुई तो है सदा की चट्ट ! जरूर यह तर माल उड़ा रही है। मैंने नथुने फुलाकर सूँ-सूँ हवा को सूँघा। मगर सिबाय अतर, सन्दल और हिना की गरम-गरम खुशबू के और कुछ न महसूस हुआ।

लिहाफ़ फिर उमड़ना शुरू हुआ। मैंने बहुतेरा चाहा कि चुपकी पड़ी रहूँ, मगर उस लिहाफ़ ने तो ऐसी अजीब-अजीब शक्तें बनानी शुरू कीं कि मैं लरज गयी। मालूम होता था, गों-गों करके कोई बड़ा-सा मेंढक फूल रहा है और अब उछलकर मेरे ऊपर आया !

“आ...न...अर्माँ !” मैं हिम्मत करके गुनगुनायी, मगर वहाँ कुछ सुनवाई न हुई और लिहाफ़ मेरे दिमाग में घुसकर फूलना शुरू हुआ। मैंने डरते-डरते पर्लंग के दूसरी तरफ़ पैर उतारे और टटोलकर बिजली का बटन दबाया। हाथी ने लिहाफ़ के नीचे एक कलाबाज़ी लगायी और पिचक गया। कलाबाज़ी लगाने में लिहाफ़ का कोना फुट-भर उठा—

अल्लाह ! मैं गड़ाप से अपने बिलौने में !!!

जरूरत

मेरा दिल हथौड़े की चोटों की तरह धड़क रहा था। फूलों और अम्बर की मदहोशकून खुशबू दिलो-दिमाग को बुरी तरह झिझोड़ रही थी। लड़कियाँ-बालियाँ दूल्हा को अजला-ए-अरूसी की तरफ़ ला रही थीं। कुँवारियाँ चहक रही थीं, ब्याहियाँ ज़ेरे-लब मुस्करा रही थीं।

और मैं आनेवाली घड़ियों के इन्तज़ार में थरथर काँप रही थी। सुहागरात हर दोशीजा के ख्याबों की ताबीर होती है। मेरे हाथ बर्फ़ की झलियों की तरह सर्द हो रहे थे। पेशानी पर पसीना फूट रहा था।

दरवाज़ा खुला और लड़कियों के कहकहों के साथ ही वह एक झटके से